छोटे बच्चोके शिक्षाके लिए

छोटे बच्चोंके शिक्षकोंके लिए यह इस पुस्तिकाकी दुसरी आवृत्ती है। पहिली आवृत्तीका बालप्रेमी लोगोंने बड़े उत्साहसे स्वागत किया। इस पुस्तिकामें व्यक्त हुए विचारोंके अनुसार आचरण करनेका प्रयास भी बहत सारे लोगोंने किया। इनके इस प्रयासके बारेमें हमे जानकारी दी। इसका हमें आनंद है। _ इस पुस्तिकामें बालशिक्षाके मूलतत्त्व और बालशिक्षाके बारेमें दुनियाभरके शिक्षातज्ज्ञोंमे व्यक्त किये हुए विचार समक्ष लेनेके लिए यह पुस्तिका शिक्षकोंके साथसाथ अभिभावकोंके लिए भी उपयोगी साबित हुई है। बालशिक्षा व्यवहारको अधिक शास्त्रीय स्वरूप प्राप्त हो जाए यह इस पुस्तिकाका और इससे पहले प्रकाशित हई 'छोटे बच्चोंके अभिभावकोंके लिए' पुस्तिकाका उद्देश्य है। अभिभावक, शिक्षक, संस्थाचालक सभीको एकमत होकर इस दिशाकी ओर कदम बढाने है। इनके इस प्रयासके लिए यह पुस्तिका ग्राममंगल संस्थाकी तरफसे मददके रूपसे प्रसिध्द की गयी है !

१५ अगस्त २००४

- प्रा. रमेश पानसे

जीन जॅक्कस रूसो (१७१२-१७७८) • बच्चोंको बहुत ही छोटी उम्रमें पढना लिखन सिखानेसे फायदेकी

अपेक्षा नुकसान ही ज्यादा होता है। रूसोने कहा है की, बच्चोंको उन्हें साक्षात अनुभव लेनेका मौका देनेके बाद ही पढ़ने लिखनेकी ओर ध्यान बढाएँ। मूलतः बच्चे अच्छे ही होते है। उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया अच्छी ही होती है। उनके आजूबाजूका समाजही उनमें बुराईका बीज बोता है। मूलतः बच्चे भोले होते है। उनकी प्राकृतिक पसंद-नापसंदगीको दबोचना ठीक नही है। सामाजिक संकेत और कृत्रिम बातोंका बोझ उनपर डालना ठीक नही है। कुदरत ही शिक्षाके लिए उचित वातावरण उपलब्ध कराती है। इसलिए अच्छा है की, बचे पुस्तकोंके जरिये ज्ञान प्राप्त करनेकी अपेक्षा प्रत्यक्ष अनुभवसे ज्ञान प्राप्त कर लें। बडोंके दबाबके कारण बच्चोंकी आपनी पसंद-नापसंदगी और भावनाएँ दबोची जाती है, और फिर उनमें कृत्रिमता और झूठापन आ जाता है। (इनकी सहजता नष्ट होती है।)

• शिक्षा एक कुदरतसे सीखनेवाली, अनुभवमेंसे खिलनेवाली और बालकका हर अंगसे मुक्त विकास जोडनेवाली आनंददायी प्रक्रिया होनी चाहिए।

• जब माँ ही बच्चोंको पालेगी तब बचों में नैतिकता रोपी जाएगी,

उनका दिल स्वाभाविक भावनाओंसे भर जाएगा और देशको कभी अच्छे नागरिकोंकी कमी महसूस नहीं होगी। बच्चे शुरूमें सामिष आहार पसंद नहीं करते है, यही बात वह कुदरती आहार नही है यह साबित करती है। बच्चे

दूध,फल,सब्जियाँ,मिठाई वगैरेह ही पसंद करते है। उनकी यह स्वाभाविक रूचि बदलकर उन्हें सामिष आहार लेनेपे मजबूर मत करो। सिर्फ उसके स्वास्थ्यके लिए ही नहीं बल्कि अच्छे बर्तावके लिये भी यह जरूरी है।

जोहानन पेस्टॉलॉझी (१७४६-१८२७) • सीखते समय बच्चे अपनी सभी ज्ञानेंद्रियोंका उपयोग करें इसपर

शिक्षकने ध्यान देना जरूरी है।।

• शिक्षाका मतलब है बच्चेकी सारी क्षमताओंका एकजुट विकास ।

• परिवारमें जैसा घरेलू वातावरण होता है वैसा ही वातावरण पाठशाला और कक्षाका भी होना चाहिए। उसमें खास तौरपर (विशेष रूपसे) प्रेम और अपनापन होना चाहिए। व्यक्तित्व बडी नेक(पाक) चीज होती है। उसमें सम्मान भी शामिल है। यह बात बच्चोके बारेमें उतनी ही सच्ची है जितनी की बडोंके बारेमें सच्ची है।

• जैसे किसी बीजमें पूरा पेड समाया हुआ है, ठीक उसी तरहसे बालकमें उसके भविष्यका विकास समाया हुआ होता है। शिक्षकको सिर्फ यह देखना है कि, बालकके स्वाभाविक विकासमें किसी बाहरी चीजके कारण बाधा न आएँ।

• पतेकी बात तो यह है की, जिन्हें सिखाना है उनके प्रती मनमें प्रेम होना जरूरी है, बात चाहे शारीरिक विकासकी हो या बौध्दिक विकासकी बिना प्रेमके यह नामुमकिन है। मनुष्य कृतीके द्वारा सीखता है। हर नयी अवधारणा सीखते समय उसके उदाहरण स्वरूप कृती भी आनी चाहिए। इससे अवधारणा आसानीसे समझमें आती है।

• हमारा व्यक्तित्व हमारा जीवनही गठित करता है। और यह गठन शब्दों के द्वारा नही, प्रत्यक्ष कृतीके द्वारा होनेवाली चीज है।

फ्रेडरिक फ्रोबेल (१७८२-१८५२) • बच्चे छोटे फलों जैसे होते है। अलग अलग किस्मके होते है और उनकी निगरानी रखनी पडती है। हर एक बालक सुंदरही होता है और समुदायमें भी हर एक अपनी विशेषताके कारण छलक उठता है।

घर और पाठशाला दोनों शिक्षाके अपरिहार्य घटक है। अनचाही बातोंका दबाव और किसी भी बातकी केवल बाहरी जानकारी इन चीजोंसे बच्चोंको मुक्ती दिला सके तो अच्छा है।

छोटी उम्रमें मानवी विकासमें केवल खेलही अभिव्यक्तीका साधन होता है। क्योंकी खेलके द्वारा ही बालकके दिलकी बातका पता चलता है।

• जो बच्चा शरीर थक जानेतक, लगनसे खेलता है या कुछ भी करता है, आगे चलके उसीका व्यक्तित्व स्वार्थत्याग करनेवाला और

निश्चयी व्यक्तित्वके रूपमें उभरता है। देशका भविष्य महिला और माताओंके हाथमें है। संशोधक या सत्ताधारियोंके हाथमें नहीं। इसलिए महिलाओंका विकास होना चाहिए। क्यों की वही मानवजातीकी शिक्षिका होती है। इनके बिना नयी पिढीका गठन अच्छी तरहसे नही होगा।

• खेल सुस्ती मिटानेकेलिए की हुई कृती नही है। बल्की घटना कैसे घटती है यह समझ लेनेकेलिए आवश्यक कृती है। खेलोंसे आनंद जरूर मिलता है लेकिन उनका कुछ मकसद भी होता है।

• हर बच्चा अलग होता है और वह अपनी समयसारिणीके अनुसार चलता है। इसलिए उसे किसी दूसरे अलग तरीकेसे बर्ताव करनेपर मजबूर करना फिजूल और निराशाजनक है।

• छोटे बच्चोंके दिमागमें ज्ञान ठुंसनेका प्रयास सालोसाल किया जा रहा है और बेकार हुआ है ।खाली गया है। थोड़े समय तक उसका फायदा होता है लेकिन उससे दीर्घकालके लिए फल नहीं मिलता।

• मनुष्य सर्जनशील प्राणी है।मनुष्य और बाकी सारे जीवोंमे मूलतः फर्क है। मनुष्य अपने इर्दगिर्दका वातावरण बदल स्कता है। मामूली सादे हथियारसे लेकर आजके यंत्रोंका जटिल तकनीक और उसके आधारपर भविष्यमें बदलाव लानेकी करामत मनुष्य कर सकता है। * असली शिक्षाद्वारा बच्चोंको उनकी सर्जनशीलताका एहसास दिलाना जरूरी है।

रूडॉल्फ स्टायनर (१८६१-१९२५) संस्कृतिकी दृष्टीसे वंचित बच्चोंको केवल धंधेका ज्ञान देना काफी नहीं है। सर्वव्यापक शिक्षा देना जरूरी है। (शिक्षाके सारे अंगोंका ज्ञान कराना जरूरी है।) सारे बच्चे एक जैसे नहीं होते है। शिक्षकको ऐसी उम्मीद भी नहीं रखनी चाहिए। बल्की छात्रोंके अलग-अलग प्रकारके प्रती शिक्षकको संवेदनशील होना चाहिए। शिक्षकको छात्रोंकी व्यक्तिविशेषता ढूंढनेका कसके प्रयास करना चाहिए। ऐसा करनेसे अपने हर छात्रके बारेमें उसे पूरी जानकारी हासील होगी। उसके बाद ही हर छात्रकी उसकी अपनी क्षमताओंका विकास होनेमें शिक्षक मदद दे सकेगा। इस तरहसे हर छात्रकी क्षमताका वैयक्तिक रूपमें विचार करके उसे उसकी क्षमताकी परम सीमातक ले जानेसे छात्र यह महसूस करेगा की उसकी तरफ पूरा ध्यान दिया जाता है, उसके गुणोंकी कदर की जाती है और उसे सबल बनाया जाता है। व्यक्तीके आपसी संबंधोंपर जोर देनेपर ही स्वतंत्रता और मानवताकी और ले जानेवाली शिक्षा प्रत्यक्ष रूप ले सकेगी।

उम्रके सात, चौदा या किसी भी चरणपर व्यक्तीको जगका सम्यक रूपमें आकलन होता है। किसी एक ही गुणकोअ अग्रिम स्थान देकर और बाकी क्षमताओंको नजरअंदाज करके हम उसे तितर-बितर कर देते है, बिखेर देते है। ऐसा नहीं करना चाहिए। किसी भी उम्रमें, उस उम्रके अनुसार बच्चेकी क्षमताएँ जिस स्तर तक पहप्तचनेकी उम्मीद होती है, वहाँ तक उसे ले जाना चाहिए। पेडपर चढनेसे लेकर किसी कविताकी कदर करनेतक किसी भी करतबकी शिक्षा पानेकी एक वाजिब, पर्याप्त उम्र होती है। उम्रके अनुसार उचित उपक्रम या अनुभव छात्रोंको भरपूर मात्रामें देने चाहिए। जिस उम्रमें जो अनुभव उन्हें मिलने चाहिए उन्हें मद्देनजर रखके वह अनुभव छात्रोंको दिये तो वह जीवनका सारे अंगोंसे अनुभव (लेंगे)करेगे और आगे चलकर काम आनेवाली हर तरहकी चीजें जुटा पाएँगे। इतिहासकालमें सहयोगके आधारपरही बडी संस्कृतियोंका पोषण हुआ है, स्पर्धाके आधारपर नही। शिक्षामें भी स्पर्धाका पर्याप्त स्थानहै। उसके कारण छात्र, गुण, नंबर या बख्शीश पाते है। लेकिन ऐसा करनेसे मूल विषयका ज्ञान इन सब चीजोंको हासील करनेका साधन मात्र बनकर रह जाता है।। छात्रोंको जरूरी है की, दूसरोंके व्यावहारिक, नैतिक, शारीरिक या कलात्मक गुणोंकी कदर करना सीखें। उनकी कक्षा भी मानवी विविधतासे कितनी संपन्न है यह उन्हें जान लेना चाहिए, उसका आनंद लेना चाहिए। छात्र दूसरोंका आदर करना सीखें। आपसमें स्पर्धा ईर्ष्याके बजाय सहयोगके संबंध बनाना, बढाना सीखें इस दिशामें शिक्षकको प्रयास करना चाहिए। तभी आगे चलकर भविष्यमें आनंदमय समाजजीवनका निर्माण होगा।

जॉन ड्युई (१८५९-१९५२) बच्चेको जिसमें रुचि है उसी विषयसे, चीजसे उसके शिक्षाकी प्रक्रिया शुरु होनी चाहिए और उसीके सहारे उसे आगे ले जाना चाहिए।

सोचना और कृति करना इसकी आपसी क्रिया-प्रतिक्रियामेंसे कक्षामें बचोंको दिया जानेवाला शैक्षिक अनुभव उभरना चाहिए। समूचे समाजके छोटे रुपमें पाठशाला साकार होनी चाहिए। शिक्षक धींगामुश्ती(उइंडतासे) पाठ पढानेवाला और याद करानेवाला नहीं होना चाहिए। वह बच्चोंको मार्ग दिखानेवाला और उनका सहयोगी होना चाहिए। बच्चोंकी सारे अंगोंसे प्रगति ही शिक्षाका ध्येय होना चाहिए। अगर शिक्षाको हम सामाजिक प्रक्रिया या सामाजिक कार्यके रुपमें देखते है तो किस प्रकारके समाजकी बात हम करते है यह पहले तय होना चाहिए। जब तक यह तय नहीं होता तब तक शिक्षा कोई मायने नहीं रखती है। (शिक्षाका कोई अर्थ ही नहीं।) पाठ पढके जो ज्ञान हम हासील करते है वह असली जिंदगीसे जुडा हुआ नहीं होता है। उसका संबंध परीक्षामें गुण पानेतकही सीमित है। किसान,नाविक,व्यापारी,बैद, या प्रयोगशालामें काम करनेवाले लोगोंके बारेमें जो ज्ञान हमें मिलता है वह सिर्फ जानकारी होती है, वह कृतीके साथ मेल नहीं रखती है।

मादाम माँटेसोरी (१८७०-१९५२) बालकका अवलोकन करनेकेलिए, विकृतीसे बाहर निकालकर उसे साधारण स्थितीमें लाना याने विकृतीसे उसे मुक्ती दिलाना यह माँटेसोरीकी बालस्वतंत्रताकी कल्पनाका परिमाण है। बालक अपनी सहज प्रेरणाके अनुसार बर्ताव करता है। यह उसकी कुदरती प्रेरणा होती है, मानवके व्यक्तिगत विकासकी प्रेरणा होती है। इस प्रेरणाको अवकाश प्राप्त करानेके लिए बालकको सभी प्रकारके दबावसे मुक्त रखना चाहिए। बालक वयस्कोंका अनुकरण करके सीखता है। यह सूझबूझके किया हुआ अनुकरण होता है। ऐसा अनुकरण एक शैक्षिक कार्य है। माँसपेशीयोंकी मशक्कतकेलिये और बौध्दिक स्तरपर वस्तूसे परिचित होनेकेलिये बारबार की हुी कृती है।

जनमसे बालक संवेदनशील होता है। उसकी स्वयंशिक्षाकी प्रेरणा बहुत जाग्रत होती है उसे वैसीही बनाये रखना जरुरी है। इसलिए उसपर शिक्षा थ्पना उचित नहीं है। बाल्क आत्मनिर्भरताके पीछे पागल होता है। इसके पीछे भी उसकी कुदरती प्रेरणा और विकासकी जरुरत होती है। इसलिए घरमें या पाठशालामें उसकी आत्मनिर्भर कृतीको प्रतिबंध नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके प्रयासको अवकाश दिलाना चाहिए। हमेशा बच्चोंका आदर करो। बालककी अंतर्गती केलिए उचित वातावरण प्राप्त करानेका मतलब है स्वतंत्रताका वातावरण उपलब्ध कर देना। ऐसा वातावरण बालककी क्रियाशीलताको प्रेरणा देता है इसलिए महत्त्वपूर्ण है। बालक स्वाभाविक रुपसे स्वतंत्र व्यक्ती होता है। उसका जन्म, उसका विकास, उसकी मृत्यु ये सारी बातें स्वतंत्र है (वह किसी चीजका नतीजा या कारण या और कुछ नहीं होता है।) बालकको अपना विकास करवा लेनेका स्वातंत्र्य होना चाहिए। यह विकास उसकी अपनी गति, उसकी अपनी इच्छाके अनुसार करनेका अवकाश उसे प्राप्त करानेका मतलब है बालकका स्वातंत्र्य। घर या पाठशालाका वातावरण बालकको निर्भीक लगना चाहिए। पाठशालाके शिक्षक, परीक्षा, अनुशासन, सजा इन स्बके कारण पाठशालाका वातावरण भयसे भरा हुआ रहता है। इसके कारण बालककी स्वयंशिक्षाकी स्वतंत्रता छीन ली जाती

बच्चे उनकी स्वयंप्रेरणासे की ही कृतीके द्वारे महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ सहजतासे अपना सकते है। बच्चे सीखें इसलिए उनसे सख्तीसे पेश आनेकी कोई जरुरत नहीं है। इतना हे नहीं, उन्हें लालच दिखानेकी या सजा देनेकी भी जरुरत नहीं

है।

आगे चलकर हम सीखनेकी कौनसी पध्दतीको अपनानेवाले है यह बचपनमेंही तय होता है ।जो बच्चें बचपनमें किसी लालच या

सजाके बिना अपनीही कृतीके द्वारे सीखते है वही बडे होकर स्वतंत्र वृत्तीके, स्वयंप्रेरणासे स्वयंशिक्षा लेनेवाले होते है।

गिजुभाई बधेका (१८८५-१९३९) शिक्षापूर्वे तैयारीका मतलब पूरी शिक्षा नहीं। शिक्षाको सफलता दिलानेका वह एक साधन है। साफ=सुथरापन, मनकी प्रसन्नता और अभिमुखता यह शिक्षकके‌लिए पूर्व तैयारी है। यह तैयारी पूरी होगी तो काम जोशपूर्ण होगा और अधुरी होगी तो काम बिखरा हुआ होगा। नये ढंगसे चलायी जानेवाली पाठशालाके नये ढंगसे काम करनेवाले शिक्षकोंने एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। जो भी जितनी भी फसल आयी है वह उचित ही है ऐसा नहीं समझना चाहिए। अगर एक बार अच्छी फसल आयी है तो वैसीही फसल हमेशाकेलिए क्यों न पायी जा सकें ? यह बात मुमकिन हो इसकेलिए शिक्षकको अभ्यास बढाना चाहिए। (ज्यादा अभ्यासकी जरुरत है।) और बारीकीसे अवलोकन करनेकी जरुरत है और ज्यादा मेहनत करनेकी जरुरत है। इसके साथही कहाँपे गलत तरीकेसे काम हो रहा है इसकी तलाशमें रहना चाहिए। शिक्षकको शुध्द भाषामें स्वाभाविक ढंगसे बात करनी चाहिए। उनके शब्दोंके उच्चारणमें अशुध्दी हो तो ध्यानपूरक उसे दूर करना चाहिए। सजा देनेसे बुध्दी बढती नहीं, लेकिन भय जरुर बढ़ता है। सजाके भयके कारण बच्चे पाठ पढके, लिखके तैयारी करके आएँगे लेकिन उन्हें वह सब हमेशाकेलिए याद नहीं रहेगा। बच्चोंको पढानेकी क्षमता अभावके कारण शिक्षकका मन संतुलित न हो, तो उसपर बच्चोंको मारनेकी नौबत आती है। जो लोग बात तो नये युगकी करते है लेकिन पाठशालामें मारपीटकी नीतीही अपनाते है वह भावी प्रजाका अहित कर रहे है। उनसे द्रोह कर रहे है। गलतफहमीके कारण निर्माण होनेवाला असंतोष आसमानकी घटाकी तरहा थोडे समयके बाद दूर हो जाता है। और निरभ्र आकाशकी तरहा निर्मल प्रेम अपना स्थान फिरसे ग्रहण कर लेता है। फिर भी बच्चोंके मनपे उस असंतोषके तूफानका अंधेरा और गडगडाहटकीही छाप रह जाती है। ' हिलो मत, उधम मत मचाओ, पढो, लिखो और परिक्षाकेलिए तैयार हो जाओ, चुप बैठो, सयाने बनो, हाथ गंदे मत करो, कपडे गंदे मत करो, समय बरबाद मत करो' इस खोखले उपदेशका परिणाम खतरनाक है। कुदरतमें जो खुलापन, विशालता भरी हुी है, वह शिक्षाका एक बडा स्थान है। आजके घर या पाठशालाएँ अंधेरकोठरी बन बैठी है। बालकोंको वहाँसे मुक्त कराके कुदरतरुपी बगीचेमें घूमने देना चाहिए। क्यों की बालकके विकासकेलिए उसके ज्ञान प्राप्त करनेवाले पाँचो अंगोंको तरह तरहके अनुभव कराना बहुत जरुरी है। समर्थ शिक्षाशास्त्रज्ञोंकी रायके अनुसार जो शिक्षक यह कहता है कि, मैं बच्चेको सिखाता हँद्ध, मैं बच्चेको चाहे जैसा बना सकता हँद्ध वह सच्चा शिक्षक नहीं है। वह शिक्षाद्रोही है, बालद्रोही है, गुनहगार है।

ताराबाई मोडक (१८९२-१९७३) ज्ञानके प्रती अभिमुखताका निर्माण करनेकेलिए जेता बाहरी बनावटी उपायोंका अवलंबन नहीं करते है। लेकिन जिस शिक्षापध्दतीने कुदरती अभिमुखताकेलिए पुष्टीदायी बनना स्वीकार किया है, उसीका नाम है बालकमंदिरकी शिक्षापध्दती। जिस पध्दतीके कारण खुदके सामने उभर आए हुए प्रश्नोंका तन-मन लगाके मुकाबला करनेकी और खुदके प्रश्नोंका खुद ही समाधान करनेकी, स्वावलंवी बननेकी धारणा का निर्माण होता है उसका नाम बालमंदिरकी शिक्षापध्दती। छात्रोंके भेजेमें ज्ञान ठद्धसनेवाले और परीक्षा यह एक ही लक्ष्य आँखोंके सामने रखकर अपने और अपने छात्रोंके खूनका पानी करनेवाले शिक्षकसे नया शिक्षक अलग है। उसकी जीवनसृष्टी अलग है। जीवन नापने-तोलनेका उसका तरीका अलग है। नये शिक्षककी यह अटल श्रध्दा है कि, मनुष्यमें विकास कर लेनेकी स्वयंतृष्णा है और उसके सामाधाम के लिए वह चाहे जितना कष्ट उठानेको तैयार रहता है। उसे यकीन है की, ऐसे कष्ट उठाकर अपनी भूख खुद-ब-खुद तृप्त करनेकी सुविधा प्राप्त करान यही सच्चा शिक्षाकार्य है। हम पश्चिमी लोगोंका बाहरी चीजोंमें अनुसरण करते है। उसमे अपनी

गुलामीकी जो प्रदर्शनी होती है उसके कारण हमने अपनीही हँसी उडायी है। जैसे की, गरमीसे परेशान होते हुए भी उनलोगों जितने कपड़े पहनकर हम शानसे फिरते है। गरम मोजे या टाइट बूटोंकी जरुरत ना होते हुए भी उनमें पाँव जकडकर चलनेका तप करते है। देहाती बच्चे देखने और समझ लेनेकेलिए उत्सुक रहते है। डुब गये हुए, उसमें क्या देखना है ? ऐसा बोलके मॅसह ? बनानेवाले नहीं होते है। बल्की चालाक, बलवान, तेजस्वी और जिज्ञासू होते है। बच्चोमे धीरेधीरे हमसे दूर रहकर खेलना, दिन-ब-दिन खुदके काम खुद कर लेना, अपनी इच्छासे किसी ना किसी काममें लगे रहना और उस कारण प्रसन्न रहना यह सब बालविकासके लक्षण है । कच्ची उमरमें बच्चेके मनमें भय झुर हीन होनेकी भावना घुस गयी तो आगे चलके वह अगली जिंदगीकी जिम्मेदारी लेनेकी क्षमता नही रखते है। यह दो रोग मनकी शक्तीको तपेदिककी तरहा शक्तीहीन बनाते है। बच्चेमें जिज्ञासा होती है, ज्ञान प्राप्त करनेकी लालसा होती है और उसकेलिए मेहनत करनेकी शक्ती भी होती है (कष्ट उठानेकी शक्ती भी होती है।) इसीलिए उनके इस ज्ञानप्राप्तीके रास्तेमें स्पर्धाके रुपमें रुकावट नहीं डालनी चाहिए। स्पर्धा एक किस्म का जहर है। ज्ञानप्राप्तीकी स्वाभाविक इच्छाको मार देनेका एक साधन है। स्पर्धाके साथ आनेवाली सजा और बक्षीश दोनोंको बचेकी पवित्र जिंदगीसे दूर रखोगे तब बच्चेके संबंधमें अपना फर्ज अच्छी तरहसे निभानेका पुण्य हासील करोगे। ऐसा नहीं की स्पर्धाके कारण ही सर्वोत्तम क्षमता प्राप्त की जाती है। बल्की उन्हें यह गलतफहमी हो सकती है की सिर्फ कक्षामें अव्वल आना ही काफी है। अपनी क्षमताके सर्वोच्च स्तर तक पहुचनेका महत्त्व उन्हें नहीं समझता है। इसी वजहसे बहुत सारे पढाईमें तेज बच्चे अपनी क्षमता आजमानेके बजाय थोडी-सी पढाई करके बैठ जाते है। अंग्रेजी माध्यमकी वजहसे बच्चोंकेलिए ज्ञान प्राप्त कर लेनेका और दूसरोंके साथ भाषाके जरिए विचारविमर्श करनेका रास्ता आसान नहीं बल्की कटीला बनाया गया है। मैं दिलसे यह चाहती हुं की, जिस तरहासे बडोंकेलिए निरक्षरताके खिलाप बगावत करनी है उसी तरहा बचोंके बारेमें साक्षरताके खिलाफ बगावत करनी चाहिए। साक्षरता ही बच्चोंकी आँखे बिगाडती है। उनकी कोशिश, ज्ञान कमानेकेलिए प्रयास करनेकी शक्ती सबकुछ दबोच देती है। उनका सारे अंगोंसे विकास होनेके आडे आती है।

पियाजे (१८९६-१९८०) बच्चोंकी भषा और विचार करनेका तरीका बडोंसे अलग होता है। सीखनेकेलिए बच्चोंको अलग अलग वस्तुएइ आजमनेकी जरुरत होती है। अनुभव जब ज्यादातर जाना पहचाना और थोडासा नया होता है तब बच्चे दिल लगाकर सीखते है। उम्रके विशिष्ट स्तरपर बच्चोंकी बौध्दिक क्षमताएइ अलग अलग होती है। इसी कारण ऐसा नहीं होता की, सभी बच्चे एकही चीजमें रुचि लेंगे या एकही बातसे सीख जाएइ। उन्हें निजी स्तरपर कृती करनेका मौका देना चाहिए। उन्हें खुद चुननेका मौका देना चाहिए। स्व-अध्ययन, स्व-निग्रह यह बच्चोंके सीखनेका महत्त्वपूर्ण पहलू है। बच्चेके विचारशक्ती, विकासकी पगडंडीयाँ होती है। हर पगडंडीपर बच्चेका कोई बलस्थान और कुछ खामीयाँ होती है। शिक्षकको दोनोंका आदर करना चाहिए। जिस पगडंडी केलिए बच्चा तैयार नहीं है उस पगडंडीकी शिक्षा उसपे नहीं थोपनी चाहिए।

बच्चेको कक्षामें बोलनेका, पूछनेका, आपसमें बातें करनेका, चर्चा करनेका पूरा मौका देना चाहिए। जहाँपर शारीरिक गतिविधियोंके सहारे सामाजिक अभिसरण होता है वहाँपर बालकके बौध्दिक विकास भी होता है। छोटी उम्रमें सभी बच्चे एकही स्तरपर समान शिक्षा नहीं ले पाते है। भाषण, या पढने-लिखनेसे ज्यादा कुछ नहीं सीख सकते।

शिक्षकको बालशालामें इस विचारसे जाना चाहिए की, वहाँ जाके वह कुछ सीख सके। खुद बचे, उनके स्वभाव, बर्ताव, बच्चोंके साथ होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रिया यह शिक्षककेलिए सीखनेके साधन है। शिक्षकको बालशालामें

सहायता करनेकेलिए जाना चाहिए। छोटे बच्चोंको खेलके अल्ग अल्ग साधन उपलब्ध कराना, बच्चोंकी जरुरतोंके अनुसार उसमें बदलाव लाना, उनकी शारीरिक जरुरतोंपर ध्यान देना और कक्षाका वातावरण प्रसन्न रखना यह सहायकके काम है। शिक्षकको बालशालामें अवलोकन करनेकेलिए जाना चाहिए। बच्चा कैसे बोलता है, कैसा बर्ताव करता है, कैसे खेलता है, साधनका किस तरहसे इस्तेमाल करता है, उसका दिल किससे बहलता है, किस कारण वह ऊब जाता है, दूसरोंके साथे कैसे घुलमिल जाता है, किस कारण हँसता-रोता-रुठता है, अपने आप कैसे सीख जाता है इसका लगातार अवलोकन करना होता है। शिक्षकको बालशालामें बच्चों केलिए जाना चाहिए।

हॉवर्ड गार्डनर (१९४३- ?) शिक्षक विद्यार्थीयोंको ऐसे अर्थपूर्ण अनुभव करा दें जिसके आधारपर वे ऐसे ज्ञान और कौशल का विकास कर सकें जो जिंदगीभर केलिए उपयोगी साबित है। जो विषय तुम पढा रहे हो उसे अनेक अंगोंसे भिड जाओ। इसीको मैं बहुविध प्रवेशद्वार उपलब्ध कराना कहता हूइ । लिखना-पढना-गिनना इनका पाठशालामें मध्यवर्ती स्थान है। लेकिन बच्चोंके साथ रुखेपनसे व्यवहार करनेको मेरा विरोध

है। और बच्चोंको पढना कवायत करने जैसा ना लगे ऐसी मेरी इच्छा है। बच्चे खुशीखुशी सीखकर और सवाल उठाकर यह सब अपना सकते है। मुझे ऐसा लगता है की, विद्यार्थीयोंको थोडे महत्त्वपूर्ण विषयोंपर अपना ध्यान जुटाना चाहिए। विषयको गहराई में जाकर समझ लेना चाहिए और खुद ही ठीकसे समझ लेना चाहिए। अगर तुम संसारको जान लेना चाहते हो तो तुम्हारी संस्कृतीमें सत्य, शिव और सुंदर इस विषयमें जो अवधारणा है वहाँसे शुरुवात करनी चाहिए। छोटे बच्चोंके मनमें पूर्वधारणाए और निश्चित कायमस्वरुपी कल्पनाए नहीं होती है। इसलिए मैं समझता हुं की, बच्चोंके मनमें सत्य-शिव-सुंदरताका बीज बोना आसान होता है। जो बातें बच्चोंने समझना जरुरी है ऐसा आप सोचते है उसीपर मूल्यांकनका जोर होना चाहिए। उसमें उन्होंने जो ठीकसे समझ लिया है उसे प्रत्यक्ष रुपमें उतारनेका उन्हें मौका देना चाहिए। प्रदर्शनी और परियोजनाके आधारपर विद्यार्थीयोंने जो अर्थपूर्ण अध्ययन किया है उसे वह व्यक्त कर सकेंगे और उनका मूल्यांकन मैं उसी आधारपर करनेको अहमियत प्राथमिकता दुंगा । एक वाक्यमें जबाब देना, विकल्पोंमेंसे जबाब चुनना ऐसे प्रश्नोंके आधारपर परीक्षा नहीं हो सकती। समज जिसे असलमें अहमियत देता है ऐसेही मापदंडोंपर विद्यार्थीयोंका ज्ञान और कौशल नापना चाहिए।

बालशिक्षाका क्या अर्थ है ?

बालशिक्षा याने शालापूर्व शिक्षा याने की छः सालसे कम उम्रवाले बच्चोंकी शिक्षा। व्यक्तिजीवन और समाजजीवनमें शिक्षाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि बालापन व्यक्ते-विकासकी सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था

है। यही व्यक्तीके कुदरती क्षमताओंके विकासका काल होता।

प्रौढ व्यक्तीके जीवनकी सारी क्रियाओंको नियंत्रणमें रखनेवाला मस्तिष्क बाल अवस्थामें ही विकसित होता है। इसी कालमें मनुष्यके ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय अपनी क्षमताकी परम सीमापर पहइचते है।(यह मनुष्यके जिंदगीकी, सभी कार्योंकी आखिरतक टिकनेवाली पुंजी होती है।) मानवी मनकी स्थिरता, भावनाओंका संतुलन और सहयोगी सामाजिकता हासिल करनेकी बुनियाद इस कालावधीमें डाली जाती है। जिसे वैज्ञानिक स्वरूपकी बालशिक्षा कहते है। वह शिक्षा बाल- अवस्थाकी अलग अलग क्षमताओंके विकासको पुष्टी देनेवाली होती है और विकासमें आनेवाली बाधाए टूइढकर उनका उचित समयपर निकासन करनेवाली होती है। शरीरविज्ञान और

मानसविज्ञान ये कहता है की, बालअवस्थामें जो भी विकृती निर्माण होती है वह आगे चलकर पूर्ण रूपसे ठीक होना मुश्किल होता है। बालशिक्षा यह प्रयास करती है की, ऐसी विकृतीका निर्माण ही ना हो, और अगर हो भी गया तो शुरुमेंही उनसे मुक्त हो सके, उन्हें दूर कर सके।

❖